"बुद्ध मूर्ति एवम् स्तूप का तादात्म्य"

अतुल नारायण सिंह
शोध छात्र
प्राचीन इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रारम्भिक बौद्ध कला में बुद्ध को मानव आकृतियों के स्थान पर कुछ प्रतीकों, विशेषकर स्तूप के रूप में दिखाया गया है। अनुश्रुति है कि बुद्ध की शरीर धातु के आठ भाग किये गये और प्रत्येक भाग के ऊपर एक–एक स्तूप की रचना हुई, इनमें 7 स्तूप क्षत्रियों द्वारा निर्मित किये गये और आठवां ब्राह्मण के द्वारा। इससे यह सूचित होता है कि बुद्ध के जन्म में ब्रह्म और क्षत्र तत्वों का समन्वय था अर्थात् वे योगी और चक्रवर्ती इन दोनों आदर्शों के प्रतीक थे।[1] स्तूपों के साथ–साथ बुद्ध की आराधना प्रतीकात्मक चिन्हों, यथा चरणकमल, खाली सिंहासन, त्रिरत्न, माया देवी द्वारा जन्म देने के उपरान्त दो हाथियों के द्वारा कलश से जल उड़ेल कर नवजात का अभिषेक, आदि के माध्यमों से किया जाता रहा।

स्तूप के महत्व को इसलिए प्रबलतम् माना गया क्योंकि ये स्तूप महात्मा बुद्ध के अस्थि अवशेषों पर बनाये गये थे जिससे बौद्ध धर्म और संस्कृति के अनुयायियों के आस्था का यह प्रबलतम् केन्द्र था। धीरे–धीरे बौद्ध धर्म और संस्कृति महात्मा बुद्ध के पश्चात् विचारधारा के स्तर पर बँटती हुई दिखाई दी और कुछ ही समयोपरांत विभिन्न बौद्ध संगीतियों में यह दरार बढ़ती चली गयी और बौद्ध धर्म हीनयान और महायान रूपी शाखाओं में विभाजित हो गया। बौद्ध धर्म में यह विभाजन महात्मा बुद्ध के विचारों पर अपनी–अपनी व्याख्याओं से उद्भूत हुआ था, जिसमें एक बड़ा कारण बना महात्मा बुद्ध का मानवीय रूप में अंकन को लेकर। हीनयानी उनकी अवस्थापना को प्रतीकों के रूप में ही मानने के प्रबल समर्थक थे; लेकिन महायानी उनकी आराधना अब मानवीय रूप में मूर्तियों के माध्यम से करना चाहते थे। अतः बुद्ध की मृत्यु के लगभग 400 साल पश्चात्

अब यह प्रश्न आ खड़ा हुआ कि आखिर महात्माबुद्ध की मूर्ति को किस प्रकार से बनाया जाय, क्योंकि 400 सालों में तो उनकी वन्दना प्रतीक रूप में ही होती रही और वे इसी रूप में सबके मनमस्तिष्क में विद्यमान थे।

प्रतिमा का अर्थ प्रतिरूप होता है जिसका तात्पर्य है समान आकृति। प्रतिमा शब्द का प्रयोग वस्तुतः उन्हीं मूर्तियों के लिए किया जाता है जो किसी न किसी धर्म अथवा दर्शन से सम्बन्धित हो। मूर्ति सामान्यतः दुनियावी मनुष्य या प्राणियों की आकृति होती है जबकि प्रतिमा शब्द का प्रयोग देवी–देवताओं, महात्माओं या स्वर्गवासी पूर्वजों आदि के लिए किया जाता है। प्रतिमा निर्माण के लिए निश्चित लक्षणों और नियमों का विधान होता है, फलतः कलाकार प्रतिमा निर्माण के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र नहीं होता साथ ही साथ उसमें कलाकार के आंतरिक कला का अभिव्यक्तिकरण भी उसमें पूर्णरूपेण संभव नहीं है।[2]

तो अब यह प्रश्न स्वाभाविक सा है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 400 वर्षों पश्चात् बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण आखिर किस प्रतीकों को लेकर और लक्षणों को अभिव्यक्त करके बनाया जाये, क्योंकि प्रतीक तो वही जीवंत थे जिसे हम त्रिरत्न, चरणकमल, खाली सिंहासन व स्तूप के रूप में देख रहे थे; जिसमें मानवीय प्रतीकों के लिए सिर्फ चरणकमल ही ऐसा प्रतीक था जो मानवीय परिकल्पना को जीवित करता था। अतः बुद्ध की प्रतिमा से पूर्व महायानियों ने बोधिसत्वों की कल्पना की। बोधिसत्व वह है जो बोधि प्राप्त करने की इच्छा रखता हो; बोधिसत्व की अवस्था प्राप्त करने वाले साधक का जीवन अत्यन्त उदात्त, महनीय और व्यापक होता है। बोधिसत्व की यही अंतिम कामना रहती है कि सत्य मार्ग के अनुष्ठान से जिस पुण्य संसार का अर्जन मैंने किया है उसके द्वारा समस्त संसार के प्राणियों के दुःखों की शांति हो।

इस प्रकार बुद्ध को लोकोत्तर स्वीकर लेने के पश्चात् उनमें प्रतिमा निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो गया लेकिन इन बोधिसत्वों की प्रतिमाओं में पूर्व प्रतीकों का सन्निवेश किया गया जिसे बोधिसत्वों को बुद्ध से आसानी से जोड़ा जा सके। कनिष्ठ के राजत्व काल के

तीसरे वर्ष में वाराणसी के महाक्षत्रप खरपल्लान ने बोधिसत्व प्रतिमा के साथ छत्र–यष्टि स्थापित की थी।[3] बोधिसत्व की प्रतिमा के साथ छत्र–यष्टि की स्थापना को यदि हम स्तूप पर स्थापित यष्टि–छत्र से जोड़कर देखें तो यह कहा जा सकता है कि यह एक आरम्भिक प्रयास था, जिसके माध्यम से सर्वप्रथम बोधिसत्व के रूप को बुद्ध प्रतीक स्तूप के एक भाग के साथ तदात्म स्थापित किया गया, जिससे यह मान्यता प्रबल हो सके कि बोधिसत्व बौद्ध धर्म के अभिन्न अंग हैं।

इसके पश्चात् कला मर्मज्ञों में यह बहस छिड़ जाती है कि बौद्ध मूर्तियों का निर्माण जब हुआ तो वह पहले कहाँ हुआ, मथुरा में अथवा गांधार में। मेरे इस शोधपत्र में इस विषय पर मैं कुछ न कहकर एक बात जो अत्यन्त महत्व की है और उसे फूशे[4], ग्रेनबेडले[5], स्मिथ[6] और टार्न[7] महोदय बताते हैं कि चूँकि बुद्ध के रूप और शरीर का कोई आदर्श चित्र उपलब्ध नहीं था, इसलिए कलाकारों ने यूनानी देवता अपोलो के रूप में बुद्ध की प्रथम प्रतिमा बनाई। गोल चेहरा, विलासमय मुस्कान, वक्ररेखाओं से केशविन्यास आदि भारतीय विषय होते हुए भी अभारतीय हैं। अब यदि हम देखें तो यह बात तो सही ही है कि महापरिनिर्वाण सुत्त के अंतर्गत जब आनन्द तथागत से यह पूछते हैं कि ''अंतिम क्रिया कैसे होगी'' तो बुद्ध ने चक्रवर्ती राजाओं के समान अपने अवशेषों पर स्तूप बनाने की अनुज्ञा दी थी[8] और कहीं भी बुद्ध का शारीरिक वर्णन उपलब्ध न होने के कारण यह अत्यन्त कठिन प्रश्न था कि कैसे बुद्ध की प्रतिमाओं को निर्मित किया जाय और इन प्रतिमाओं की बौद्धों के मध्य मान्यता आसानी से प्राप्त हो जाए। कुषाण काल में बुद्ध के व्यक्तित्व और कुछ पूर्व प्रतीकों को मिलाकर प्रतिमा निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ और बुद्ध प्रतिमायें स्थानक और आसन दोनों ही मुद्राओं में बनी। स्थानक मुद्रा में बनी प्रतिमाओं का आदर्श पूर्व प्रचलित यक्ष प्रतिमाएं थी[9] और आसन मुद्रा की प्रतिमा हेतु योगी का आदर्श सामने रखा गया और महापुरूष के 32 लक्षणों के आधार पर बुद्ध प्रतिमा लक्षण का आदर्श स्वीकार किया गया होगा, जिसमें भौहों के बीच उर्णा, प्रलम्बकर्णपाश, अजानबाहु, विशालवक्ष आदि प्रमुख थे।

प्रतिमा शास्त्रीय यह मानते हैं कि बुद्ध की प्रतिमाओं में उनके सिर पर उष्णीष है जो विधा का प्रतीक है[10] और कुछ विद्वान उसे बंधे हुए बाल की संज्ञा देते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में आज तक हम इसे समझा पाये हैं कि इस उष्णीष या बंधे बाल की प्रासंगिकता क्या थी और क्यों इसे बुद्ध प्रतिमाओं में प्रारम्भ से लेकर अंत तक एकरूपता के साथ सर्व प्रकार में दिखाया जाता रहा है। तो इस संदर्भ में मेरा मानना है कि ''यह बुद्ध के शिरों भाग का ऊपरी भाग स्तूप की प्रतिकृति है और इसे सदैव बुद्ध के मस्तिष्क रूप में दिखाया गया है। नीचे सांची और धमेख के स्तूप के चित्र को यदि ध्यान से देखा जाये (चि0सं0–1–2) तो क्या इस भाग में बुद्ध का शिरोभाग दिखाई दे रहा है और फिर यदि बुद्ध के मथुरा और गांधार की मूर्तियों (चित्र सं0–3–4) को देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि यह स्तूप का सम्पूर्ण भाग उठाकर सिर पर रखा गया है जिसे हम बुद्ध से अलग करके देख ही नहीं सकते और दोनों को यदि हम एक साथ परिकल्पित करें (स्तूप एवम् बुद्ध प्रतिमा को) तो हमें इनमें विभेद नहीं समझ आता है।

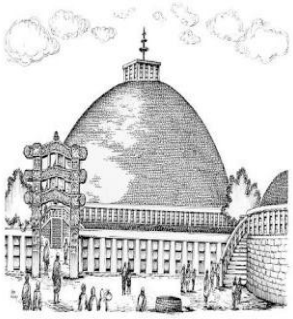

चित्र संख्या–1
(साँची का स्तूप)

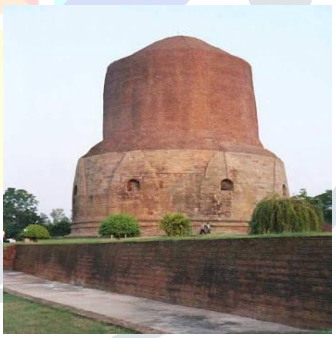

चित्र संख्या–2
(धमेख का स्तूप)

चित्र संख्या–3
(मथुरा से प्राप्त बुद्ध मूर्ति)

चित्र संख्या–4
(गांधार कला में बुद्ध प्रतिमा)

अब यदि बोधिसत्व मैत्रेय और अवलोकितेश्वर की प्रतिमाओं की बुद्ध मूर्तियों से तुलना किया जाये, तो हम पाते हैं कि मैत्रेय के सिर पर जो बाल हैं वह तो स्पष्ट रूप से जान पड़ता है कि यह बंधे हुए बाल हैं, लेकिन बुद्ध की प्रतिमा को हम देख आज तक सिर्फ यह कयास लगाते रहे कि यह बाल हैं जबकि वह बौद्ध आस्था के प्रमुख प्रतीक स्तूप प्रतीत हो रहे हैं। गांधार कला की एक कलाकृति (चि0सं0–5) में बुद्ध को ध्यानस्थ दिखाया गया है एवम् मूर्तिशिल्प में अन्य चारों तरफ विभिन्न मुद्राओं में अधीनस्थ यक्ष–यक्षिणियां हैं। मूर्ति के ठीक ऊपर शालभंजिकायें बुद्ध प्रतिमा के शिरोभाग पर वटवृक्ष प्रत्यार्पित कर रही हैं जो कि बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति से जुड़ा एक प्रतीक है। अतः यहाँ बुद्ध को प्रतीकों से ही प्रतिष्ठापित किया जा रहा है तो यह कैसे संभव है कि बुद्ध की प्रतिमा निर्माण के पूर्व बौद्ध धर्म का सबसे बड़ा प्रतीक स्तूप बौद्ध प्रतिमा निर्माण में कोई स्थान न पाए। अतः मेरा यह मत है कि बौद्ध प्रतिमाओं में मस्तक के ऊपरी भाग पर जो आकृति मूर्तिशिल्प में प्रतिष्ठापित है वह बौद्ध स्तूप है।

चित्र संख्या–5
(गांधार शिल्प में बुद्ध)

तथागत के महापरिनिर्वाण की मूर्ति को यदि हम बौद्ध कला की प्रारम्भिक मूर्तियों के साथ जोड़कर देखें तो एक समता परस्पर स्पष्ट होती है, वह है शिरोभाग का स्तूप।

80 वर्ष की वृद्धावस्था में भी शिरोभाग ठीक वैसे ही है जैसा कि धर्मचक्रप्रवर्तन के समय की मूर्तियों में। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि (चित्र सं0–6) में दर्शाया गया उष्णीष का समबन्ध केश–विन्यास से नहीं है।

चित्र संख्या–6
(बुद्ध महापरिनिर्वाण)

जावा के बोरोबोदूर बुद्धिस्ट टेम्पल को यदि ध्यान से देखा जाय तो हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि मंदिर का शिखर भाग और स्थापित मूर्ति का शिरोभाग हमें यह स्पष्ट संदेश देता है कि वे सभी बौद्ध धर्म के पवित्र प्रतीक स्तूप का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। (चित्र सं0–7)

चित्र संख्या–7
(बोरोबोदूर बुद्धिस्ट टेम्पल, जावा)

उपरोक्त समस्त विमर्शों के उपरांत हमारा मत यही है कि मूर्ति शिल्प के शिरोभाग पर जो चिन्ह हमें प्राप्त होते हैं वे स्तूप की पवित्रता के कारण बौद्ध मूर्तिशिल्प के मस्तिष्क भाग पर आभूषित किये गये जिससे बौद्ध अनुयायी इस मानवाकृति को महात्मा बुद्ध की मानवाकृति मानने में किसी पशोपेश में न पड़ें और बौद्ध धर्म की हीनयानी शाखा भी अगर इसे अपनाना चाहें तो उन्हें बुद्ध के वे सभी प्रतीक मिल जाएँ जो प्रारम्भ से ही

बौद्ध कला और संस्कृति के अंग थे। यह विषय और कई नये आयाम और विमर्श के द्वार खोलता है जिस पर इतिहासकारों द्वारा सोचने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1977, पृ0सं0–132

2 श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवम् प्रतिमा विज्ञान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1998, पृ0सं0–1–2

3 (क) महाराजस्य कर्णिकस्य सं 3

(ख) बोधिसत्वों छत्र–यष्टि प्रतिष्ठापितो

(ग) भिक्षुवलस्य श्रेपरिकस्य बोधिसत्वों प्रतिष्ठापितो

(सारनाथ बुद्ध प्रतिमा लेख, Ep. Ind, Vol.-VIII पृ0सं0–173)

4 फूशे, ए, बिगनिंग ऑफ बुद्धिस्ट आर्ट एण्ड अदर एजेज़

5 ग्रेनबेडेल, ए0, बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया

6 स्मिथ, वी0ए0, ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन

7 टार्न, डब्लू0डब्लू0, ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया

8 श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवम् प्रतिमाविज्ञान विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1998, पृ0सं0–186

9 कुमारस्वामी, ए0के0, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशिया आर्ट, लंदन, 1927, पृ0सं0–56–58

10 श्रीवास्तव, ब्रजभूषण, उपरोक्त, पृ0सं0–193

आभार

समस्त छायाचित्र https://www.google.com से साभार।